हम हैं तीसरी शक्ति

विनोबा

एक विराट दर्शन, एक मूलग्राही कार्यक्रम और एक परिपूर्ण रणनीति– यही विनोबा हैं! क्रांति से कम नहीं, क्रांति से अलग नहीं, क्रांति के अलावा दूसरा कुछ नहीं!

हम दुनिया के किसी भी भाग में क्यों न काम करते हों, आज हालत नहीं कि सारी दुनिया पर नजर डाले बगैर हमारा काम चल जाए। दुनिया में जो ताकतें काम कर रही हैं, जो नये प्रवाह शुरू हैं, कल्पनाओं और भावनाओं का जो संस्पर्श और संघर्ष हो रहा है, उन पर सतत दृष्टि रखकर ही जो भी छोटा-सा कदम हम उठाना चाहें, उठा सकते हैं।

एक-दो महीने पहले की बात है। दिल्ली में कुछ ज्ञानी, विद्वान एकत्र हुए थे और उन्होंने अहिंसा-दर्शन के बारे में कुछ चिंतन-मनन और विचार किया। उसमें हमारे पू. राजेंद्र बाबू ने कहा कि "आज कोई भी देश यह हिम्मत नहीं कर रहा है कि हम सैन्य के बगैर राज्य चलाएंगे।" उन्होंने इस बात पर दुख भी प्रकट किया कि "बावजूद इसके कि गांधीजी की शिक्षा हमने सीधे उनके श्रीमुख से सुनी और बावजूद इसके कि हमने उनके साथ कुछ काम किया है, हिंदुस्तान भी आज ऐसी हिम्मत नहीं कर सकता।" हमारे महान नेता पंडित नेहरू कई बार कह चुके हैं कि "दुनिया का कोई भी मसला शस्त्र-बल से हल नहीं हो सकता।" हमारे ये भाई, जो देश का नेतृत्व कर रहे हैं, अहिंसा को दिल से मानते हैं, उनका हिंसा पर विश्वास भी नहीं है फिर भी हालत यह है कि सेना बनाने, बढ़ाने और उसे मजबूत करने की जिम्मेदारी उन्हें उठानी पड़ रही है। हम लोग बड़ी विचित्र स्थिति में पड़ गए हैं।

श्रद्धा एक है और क्रिया दूसरी! हम चाहते हैं कि सारे हिंदुस्तान और दुनिया में अहिंसा चले। हम एक-दूसरे से न डरें, एक-दूसरे को प्यार से जीतें। प्यार ही कामयाब हो सकता है और सबको जीत सकता है, ऐसा विश्वास दिल

में भरा है। फिर एक दूसरी चीज हममें है, जिसे 'बुद्धि' कहते हैं। वैसे वह भी हृदय का ही एक हिस्सा है और हृदय भी उसका एक हिस्सा है, यों दोनों मिले-जुले हैं। हृदय कहता है कि हिंसा से कोई भी मसला हल नहीं होता; बुद्धि कहती है, "हम सेना हटा नहीं सकते! जिस जनता के हम प्रतिनिधि हैं, वह जनता उतनी मजबूत नहीं है और न उसमें वह योग्यता ही है। इसलिए उसके प्रतिनिधि के नाते हम पर यह जिम्मेदारी आती है कि हम सेना बनाएं, बढ़ाएं और उसे मजबूत करें।"

इच्छा है कि रचनात्मक कार्य करें, पर बुद्धि कहती है "सेना बनानी होगी, इसलिए जिससे सेना-यंत्र मजबूत बन सके, ऐसे यंत्रों को भी स्थान देना होगा।" जिनकी श्रद्धा चरखे पर है, उनसे पूछा जाता है कि क्या चरखा और ग्रामोद्योग के जरिये आप युद्ध-यंत्र मजबूत बना सकते या खड़ा कर सकते हैं? तो हमारी बुद्धि कहती है, "नहीं, इन छोटे-छोटे उद्योगों के जरिये हम युद्ध-यंत्र सज्ज नहीं कर सकते।"

सरकार चाहती है कि पांच लाख देहातों में कम्युनिटी प्रोजेक्ट चले। वह अधिक व्यापक बने और उसके जरिये राष्ट्र समृद्ध तथा लक्ष्मीवान् हो, देश की गरीबी मिटे। पर कल अगर दुनिया में महायुद्ध छिड़ जाए, तो मैं कह नहीं सकता कि एक भी कम्युनिटी प्रोजेक्ट जारी रहेगा! तब फौरन बुद्धि सवार हो जाएगी और कहेगी, "अभी तो राष्ट्र-रक्षण ही मुख्य वस्तु है!"

जो आज जिम्मेदारी के स्थान पर बैठे हैं, उनकी जगह पर अगर हम बैठते, तो अभी वे जो कर रहे हैं, उससे कुछ बहुत भिन्न हम करते, ऐसा नहीं है। वह स्थान ही ऐसा है! वह जादू की कुर्सी है! उस पर जो आरूढ़ होगा, उस पर एक संकुचित, सीमित, बने-बनाए और अस्वाधीन दायरे में सोचने की जिम्मेदारी आ जाती है। अमेरिका, रूस जैसे बड़े-बड़े राष्ट्र भी डर रखते हैं। पाकिस्तान और हिंदुस्तान जैसे कम ताकतवर राष्ट्र भी ऐसा ही डर रखते हैं। इस तरह एक-दूसरे का डर रखकर, शस्त्र-बल या सैन्य-बल से कोई मसला हल नहीं हो सकता, यह जानते हुए भी हम शस्त्र-बल और सैन्य-बल पर आधार रखते हैं। ऐसी दयनीय स्थिति में हम लोग हैं।

कभी-कभी लोग मुझसे पूछते हैं कि आप बाहर क्यों रहते हैं, देश की जिम्मेदारी क्यों नहीं उठाते? मैं कहता हूं कि दो बैल जब गाड़ी में लग चुके हैं, वहां मैं गाड़ी का और एक तीसरा बैल बनूं, तो उतने से गाड़ी को क्या मदद मिलेगी? अगर मैं यह रास्ता जरा ठीक बना सकूं, ताकि गाड़ी उचित दिशा में जाए, तो यही मेरी अधिक से अधिक मदद होगी। हमें 'स्वतंत्र लोक-शक्ति' के निर्माण-कार्य में लग जाना चाहिए तभी हम अपने देश की समुचित सेवा कर सकेंगे।

हमें 'स्वतंत्र लोक-शक्ति' का निर्माण करना चाहिए, ऐसा कहने से मेरा मतलब यह है कि हिंसा-शक्ति की विरोधी और दंड-शक्ति से भिन्न ऐसी

लोक-शक्ति हमें हमने आज की अपनी दंड-शक्ति सौंप दी एक अंश जरूर है, 'हिंसा' कहना नहीं अलग ही वर्ग करना शक्ति उसके हाथ में है। वह निरी दंड-शक्ति है। उस का मौका भी न आए,

जो आज जिम्मेदारी के स्थान पर बैठे हैं, उनकी जगह पर अगर हम बैठते, तो अभी वे जो कर रहे हैं, उससे कुछ बहुत भिन्न हम करते, ऐसा नहीं है। वह स्थान ही ऐसा है!

प्रकट करनी चाहिए। सरकार के हाथ है। उसमें हिंसा का फिर भी हम उसे चाहते। उसका एक चाहिए, क्योंकि वह सारे समुदाय ने सौंपी हिंसा-शक्ति न होकर, दंड-शक्ति के उपयोग ऐसी परिस्थिति देश में निर्माण करना हमारा काम है। अगर हम ऐसा करें, तो कहा जाएगा कि हमने स्वधर्म पहचान कर उस पर अमल किया। अगर हम ऐसा न कर दंड-शक्ति के सहारे ही जन-सेवा का लोभ रखें, तो जिस विशेष कार्य की हमसे अपेक्षा की जा रही है, वह पूरी न होगी। संभव है, हम भार रूप भी सिद्ध हों!

मान लीजिए, लड़ाई चल रही है और सिपाही जख्मी हो रहे हैं। उन सिपाहियों की सेवा के लिए जो लोग जाते हैं, वे भूतदया से परिपूर्ण होते हैं। वे शत्रु-मित्र तक नहीं देखते, अपनी जान खतरे में डालकर युद्ध-क्षेत्र में पहुंचते हैं। वे वैसी सेवा करते हैं, जैसी माता अपने बच्चों की करती है। इसलिए वे दयालु होते हैं। वह सेवा कीमती है। फिर भी युद्ध रोकने का काम वह नहीं कर सकती। उनकी दया युद्ध को मान्य करने वाले समाज का एक हिस्सा है। एक ही युद्ध-यंत्र का एक अंग यह है कि सिपाहियों को कत्ल किया जाए, दूसरा अंग यह है कि जख्मी सिपाहियों की सेवा की जाए! उनकी परस्पर-विरोधी दोनों गतियां स्पष्ट हैं। एक क्रूर कार्य है, दूसरा दया कार्य है। दयालु-हृदय की वह दया और क्रूर-हृदय की वह क्रूरता, दोनों मिलकर एक युद्ध बनता है। वैज्ञानिकों की कठोर भाषा में कहूं तो हम दोनों युद्ध के अपराधी हैं। हम सिर्फ दया का कार्य करते हैं, इसलिए यह नहीं समझना चाहिए कि हम दया का राज्य बना सकेंगे। राज्य तो निष्ठुरता का ही रहेगा। उसके अंदर दया, रोटी के अंदर नमक जैसी रुचि पैदा करने का काम करती है। इस तरह जो काम दया के या रचनात्मक दीख पड़ते हैं, उन्हें हम दया या रचना के लोभ से व्यापक दृष्टि के बिना ही उठा लें, तो कुछ तो सेवा हमसे बनेगी; पर वह सेवा न बनेगी, जिसकी जिम्मेदारी हम पर है और जिसे हमने और दुनिया ने स्वधर्म माना है।

मुझसे हर कोई पूछता है कि "आपका सरकार पर भी कुछ वजन दीखता है तो आप उस पर जोर क्यों नहीं डालते कि वह कानून बनाकर बिना मुआवजे के भूमि-वितरण का कोई मार्ग खोल दे?" मैं उनसे कहता हूं, "भाई, कानून के

मार्ग को मैं नहीं रोकता! मैंने जो मार्ग अपनाया है, उसमें यदि मुझे पूरा सोलह आने यश न मिला, बारह या आठ आने भी मिला, तो भी कानून के लिए सहूलियत ही होगी।" मतलब यह कि एक तो मैं कानून को बाधा नहीं पहुंचा रहा हूं, और दूसरा यह कि कानून को सहूलियत दे रहा हूं। मेरा धर्म यह मानने का है कि "बिना कानून की मदद से जनता के हृदय में हम ऐसे भाव निर्माण करें, ताकि कानून कुछ भी हो तो भी लोग भूमि का बंटवारा करें! क्या माताएं बच्चों को किसी कानून के कारण दूध पिलाती हैं? मनुष्य के हृदय में ऐसी एक शक्ति है, जिससे उसका जीवन समृद्ध हुआ है। मनुष्य प्रेम पर भरोसा रखता है। वह प्रेम से पैदा हुआ है और प्रेम से ही पलता है। आखिर जब वह दुनिया को छोड़ता है, तब भी प्रेमी की ही निगाह से जरा इर्द-गिर्द देख लेता है और अगर उसे प्रेमीजन दिखाई पड़ते हैं, तो सुख से देह तथा दुनिया को छोड़ जाता है। इसलिए हम दंड-शक्ति से भिन्न जन-शक्ति का निर्माण चाहते हैं और वह निर्माण करना ही होगा। यह जन-शक्ति दंड-शक्ति की विरोधी है, ऐसा मैं नहीं कहता। वह हिंसा की विरोधी है, लेकिन दंड-शक्ति से भिन्न है।

और एक मिसाल दूं। अभी 'खादी-बोर्ड' बन रहा है। सरकार खादी को मदद देना चाहती है। पंडित नेहरू ने कहा: "मुझे आश्चर्य हो रहा है कि जो काम चार साल पहले ही हो जाना चाहिए था, वह इतनी देर से क्यों हो रहा है?" सरकार खादी को बढ़ावा देना चाहती है, उसका उत्पादन बढ़ाना चाहती है; उसे इस काम में मदद देना हमारा और चरखा-संघ का काम है। फिर भी मैं सोचता हूं कि एक जानकार नागरिक के नाते हमें सरकार को जितनी मदद अपेक्षित हो, वह देनी चाहिए लेकिन अगर हम उसी में खत्म हो जाएं, तो हमने खादी की वह सेवा नहीं की, जिसकी हमसे अपेक्षा है। हमें खादी-विषयक अपनी दृष्टि स्पष्ट और शुद्ध रखनी चाहिए। हमारा खादी-काम ग्रामराज्य की स्थापना के लिए है, इसे हम आंखों से ओझल न होने दें।

इस बार पं. नेहरू मिलने आए और बड़े प्रेम से बोले। मैंने नम्रता से उनका बहुत-कुछ सुन लिया। फिर जब उन्होंने कुछ सलाह-मशविरा करना चाहा, तो मैंने अपने विचार थोड़े में प्रकट किए। मैंने कहा: "साक्षरता के विषय में सरकार का जो रुख है, हम चाहते हैं कि खादी और ग्रामोद्योग के बारे में भी वही रुख रहे। हर नागरिक को पढ़ना-लिखना आना ही चाहिए, क्योंकि वह नागरिकत्व का अनिवार्य अंश है, ऐसा

एक ही युद्ध-यंत्र का एक अंग यह है कि सिपाहियों को कत्ल किया जाए, दूसरा अंग यह है कि जख्मी सिपाहियों की सेवा की जाए! दोनों मिलकर एक युद्ध बनता है।

हम मानते हैं। इसीलिए हमारी सरकार सबको शिक्षित बनाने, पढ़ना-लिखना सिखाने की जिम्मेदारी मान्य करती है। भले ही परिस्थिति के कारण उस पर पूरा अमल न कर पाए, लेकिन जब तक उस पर पूरा अमल नहीं होता, सभी लोग पढ़ना-लिखना नहीं जान जाते, तब तक हमने अपना काम पूरा नहीं किया, यह खटका उसके दिल में रहेगा ही। वैसे ही हमारी सरकार यह विचार कबूल करे कि हिंदुस्तान के हर एक नागरिक को कताई सिखाना हमारा काम है। जो कातना नहीं जानते, वे अशिक्षित हैं, सरकार इतना मान ले। बाकी का सारा काम जनता कर लेगी। हम सरकार से पैसे की मदद न मांगेंगे। अगर वह यह विचार स्वीकार कर ले तो वही अधिक से अधिक मदद देने जैसा होगा।" उन्होंने सब सुन लिया, मैं समझता हूं कि उन्हें जंचा ही होगा। पर सहज विनोद में उन्होंने पूछा, "अगर सबको सूत कातना सिखा दें, तो उसके उपयोग का सवाल आएगा।" मैंने जवाब दिया: "पढ़ना-लिखना सिखाने पर भी तो उसके उपयोग का सवाल रहता ही है!" मैंने ऐसे कई पढ़े-लिखे भाई देखे हैं, जो थोड़ा-सा, दो-चार साल पढ़े पर जिंदगी भर उसका कोई उपयोग नहीं हुआ। उनके लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' हो जाता है। 'योग' के साथ 'क्षेम' लगा है, इसलिए यह चिंता करनी ही पड़ती है पर आप देखेंगे कि मैंने खादी के लिए सिर्फ इतनी ही मांग की है। जनता की सरकार है और जनता की तरफ से मांग होगी, तो सरकार को उसे पूरा करना चाहिए। अगर मैंने कानून द्वारा लोगों पर खादी लादने की मांग की होती, तो कहना पड़ता कि मैंने अपना काम नहीं समझा; दंड-शक्ति से भिन्न लोक-शक्ति हमें निर्माण करनी है, यह सूत्र मैं भूल गया!

अगर मैंने कानून द्वारा लोगों पर खादी लादने की मांग की होती, तो कहना पड़ता कि मैंने अपना काम नहीं समझा; दंड-शक्ति से भिन्न लोक-शक्ति हमें निर्माण करनी है, यह सूत्र मैं भूल गया!

हम भूमि का मसला हल करने जाएंगे, तो हमारा अलग तरीका होगा। लोकतांत्रिक सरकार उसे हल करना चाहेगी, तो दंड-शक्ति का उपयोग करेगी। उसे कोई दोष भी नहीं देगा लेकिन सरकार की इस तरह की मदद से जन-शक्ति का निर्माण नहीं होगा, लक्ष्मी का भले ही निर्माण हो। हमारा उद्देश्य सिर्फ लक्ष्मी निर्माण करना नहीं, बल्कि जन-शक्ति निर्माण करना है। हमारी अपनी एक विशेष पद्धति होगी जिसका आखिर परिणाम यह होगा कि लोगों में दंड-निरपेक्षता निर्माण हो।

तो हमारी कार्य-पद्धति के दो अंश होंगे: विचार-शासन और कर्तृत्व-विभाजन! 'विचार-शासन' का अर्थ है: विचार समझना और समझाना! बिना विचार समझे किसी बात को कबूल न करना; बिना विचार समझे अगर कोई हमारी बात कबूल

कर ले, तो दुखी होना! कुछ लोग सर्वोदय-समाज की रचना को 'लूज ऑर्गनाइजेशन' याने 'शिथिल रचना' कहते हैं। अगर रचना शिथिल हो, तो कोई काम न बनेगा। इसलिए रचना शिथिल न होनी चाहिए। किंतु सर्वोदय-समाज की रचना 'शिथिल रचना' न होकर 'अरचना' है, याने हम केवल विचार के आधार पर ही खड़े रहना चाहते हैं। हम किसी को ऐसे आदेश न देंगे कि वह उन्हें बिना समझे-बूझे ही अमल में लाए। हम किसी का ऐसा आदेश कबूल भी न करेंगे। हम तो केवल विचार-विनिमय करते हैं। कुरान में भक्तों का लक्षण गाया गया है कि उनका 'अम्र' याने काम परस्पर सलाह-मशविरे से होता है। हमारी बात सामने वाला न जंचने के कारण न माने, तो हम बहुत खुश होंगे। अगर कोई बिना समझे-बूझे उस पर अमल करता है, तो हमें बहुत दुख होगा। मैं ऐसी रचना में जितनी ताकत देखता हूं, उतनी और किसी कुशल, स्पष्ट और अनुशासनबद्ध रचना में नहीं देखता।

विचार का निरंतर प्रचार करना हमारा एक कार्यक्रम बनेगा। इस दृष्टि से जब मैं सोचता हूं, तो बुद्ध भगवान ने भिक्षु-संघ और शंकराचार्य ने यति-संघ क्यों बनाए होंगे, इसका रहस्य खुल जाता है। उन संघों के जो अनुभव आए, उनके गुण-दोषों की तुलना कर मैंने मन से यह निश्चय किया है कि हम ऐसे संघ न बनाएंगे, क्योंकि उनमें गुणों से अधिक दोष होते हैं। निरंतर, अखंड बहते हुए झरने की तरह सतत् घूमने वाले और लोगों के पास सतत् विचार पहुंचाने वाले लोग हमें चाहिए। उनके बगैर सर्वोदय-समाज काम न कर पाएगा। लोगों के पास पहुंचने और उनसे मिलने-जुलने के जितने मौके मिलें, उतने प्राप्त करने चाहिए। लोग एक बार कहने पर नहीं सुनते हैं, तो दोबारा कहने का मौका मिलने से खुश होना चाहिए। हममें विचार-प्रचार का इतना उत्साह और विचार पर इतनी श्रद्धा तथा इतनी निष्ठा होनी चाहिए।

लेकिन आज हममें से बहुत से लोग भिन्न-भिन्न संस्थाओं में फंस गए हैं। ये संस्थाएं महत्व की हैं, तो भी हमें उनकी आसक्ति नहीं, भक्ति रहे।

'नेशनल प्लानिंग' का ही अर्थ 'विलेज प्लानिंग' हो और उस विलेज प्लानिंग की मदद के लिए जो कुछ करना पड़े, दिल्ली में किया जाए।

भूदान का कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक कि हम घर-घर न पहुंचें। पांच लाख देहातों से पच्चीस लाख एकड़ जमीन हम हासिल करना चाहते हैं। काम तो आसान दीखता है! प्रति गांव पांच एकड़ कोई बड़ी बात नहीं। लेकिन उतने गांवों तक

पहुंचे कौन? इसलिए हमारे पास मुख्य साधन विचार-प्रचार का ही हो सकता है। उसकी योजना हमें करनी चाहिए, यही हमारा कार्यक्रम होगा।

इतनी हमारी हिम्मत न हो, इतने गांवों में हम कैसे पहुंचेंगे, कैसे घूमेंगे, यह सब लगता हो तो जिसे अंग्रेजी में 'शॉर्टकट' कहते हैं, उसे मंजूर कर आप कहने लग जाएं कि "कानून बना डालिए", तो वैसा कानून बनाना और वैसी इच्छा रखना हमारा काम नहीं है। कानून जरूर बने, जल्द बने और अच्छा बने पर उस काम में हम लगेंगे, तो वह परधर्म का आचरण सिद्ध होगा, स्वधर्म का आचरण नहीं। यह न कहें कि विचार सुनने-सुनाने से कब काम होगा? कारण विचार से ही काम होगा। विचार की सत्ता, विचार-शासन हमारा एक औजार है।

दूसरा औजार है— कर्तृत्व-विभाजन! सारी कर्मशक्ति, कर्मसत्ता एक केंद्र में केंद्रित न होकर गांव-गांव में होनी चाहिए। इसलिए हम चाहते हैं कि हर गांव को यह हक हो कि उस गांव में कौन-सी चीज आए और कौन-सी चीज न आए, इसका निर्णय वह खुद कर सके। अगर कोई गांव चाहता हो कि उस गांव में कोल्हू ही चले और मिल का तेल न आए, तो उसे उस गांव में मिल का तेल आने से रोकने का हक होना चाहिए। जब हम यह बात कहते हैं, तो सरकार कहती है कि "इस तरह एक बड़े राज्य के अंदर छोटा राज्य नहीं चल सकता!" मैं कहता हूं: अगर हम इस तरह सत्ता विभाजन, कर्तृत्व का विभाजन न करेंगे, तो सैन्य-बल अनिवार्य है, यह समझ लीजिए। आज तो सेना के बगैर चलता ही नहीं और आगे भी कभी न चलेगा। फिर कायम के लिए यह तय करिए कि सैन्य-बल से काम लेना है और उसके लिए सेना सुसज्ज रखनी है। फिर यह न बोलिए कि हम कभी-न-कभी सेना से छुटकारा चाहते हैं।

अगर कभी-न-कभी सेना से छुटकारा चाहते हों, तो जैसा परमेश्वर ने किया, वैसा ही हमें भी करना चाहिए। परमेश्वर ने सभी की अक्ल का विभाजन कर दिया। हर एक को अक्ल दे दी— बिच्छू, सांप, शेर और मनुष्य को भी। कम-बेशी सही, लेकिन हर एक को अक्ल दे दी और कहा कि अपने जीवन का काम अपनी अक्ल के आधार पर करो। इससे सारी दुनिया इतनी उत्तम चलने लगी कि अब वह सुख से विश्रांति ले सका! हमें भी राज्य ऐसा ही चलाना होगा कि लोगों को शंका हो जाए कि कोई राज्य-सत्ता है या नहीं।

यह भी जन-शक्ति का एक उदाहरण है कि गांववाले अपने पैरों पर खड़े हो जाएं और निर्णय करें कि फलानी चीज हमें खुद पैदा करनी है और सरकार से मांग करें कि फलाना माल यहां न आना चाहिए, उसे रोकिए। अगर वह नहीं रोकती या रोकना चाहते हुए भी रोक नहीं सकती, तो

गांववालों को उसके विरोध में खड़ा होने की हिम्मत करनी होगी। यदि ऐसी जन-शक्ति निर्माण हुई तो उससे सरकार को बहुत बड़ी मदद पहुंचाने जैसा काम होगा, क्योंकि उसी से सैन्य-बल का उच्छेद होगा। उसके बगैर सैन्य-बल का कभी उच्छेद नहीं हो सकता। मान लीजिए, दिल्ली में कोई ऐसी अक्ल पैदा हो जाए, बिलकुल ब्रह्मदेव की अक्ल ही कहिए, जिसे चार दिमाग हैं और जो चारों दिशाओं में देख सकती है; कितनी ही बड़ी अक्ल हो, फिर भी यह हो नहीं सकता कि हर एक गांव के सारे कारोबार का नियंत्रण और नियोजन वह वहीं से करे और सारा-का-सारा सबके लिए लाभदायक हो।

इसलिए 'नेशनल प्लानिंग' (राष्ट्रीय नियोजन) के बजाय 'विलेज प्लानिंग'(ग्रामीण नियोजन) होनी चाहिए। 'बजाय' मैंने कह दिया, बेहतर तो यह होगा कि 'नेशनल प्लानिंग' का ही अर्थ 'विलेज प्लानिंग' हो और उस विलेज प्लानिंग की मदद के लिए जो कुछ करना पड़े, दिल्ली में किया जाए।

जमीन के बारे में कुछ लोग कहते हैं कि 'सीलिंग' बनाओ याने अधिक-से-अधिक जमीन कितनी रखी जाए, यह तय करो। मैं कहता हूं, "पहले तो कम-से-कम जमीन हर एक को देनी ही है, यह तय करो!" यह मैं क्यों कह रहा हूं? इसलिए कि मैं कर्तृत्व-विभाजन करना चाहता हूं। आज सारे मजदूर दूसरों के अधीन काम करते हैं। काम तो करते हैं लेकिन उनके हाथों में कर्तृत्व नहीं है। गाड़ी चलती है, लेकिन उसे हम कर्ता नहीं कहते, क्योंकि वह चेतन-विहीन है। आज जो मजदूर खेतों में काम कर रहे हैं, वे चेतन-विहीन जैसा ही काम करते हैं। वे हाथ-पांवों से काम करते हैं, लेकिन हम चाहते हैं कि उनके दिमाग और दिल से भी यह काम हो! लोग कहते हैं कि हिंदुस्तान के मजदूरों में उतनी अक्ल नहीं है, इसलिए उनका दूसरों के हाथ में रहना ही बेहतर है। पर यह अहिंसा का तरीका नहीं है। उनमें जो अक्ल है, अगर हम उसका परित्याग कर दें, तो दूसरी कोई अक्ल, दूसरा कोई खजाना हमारे पास नहीं है। देश में मजदूरों की जो अक्ल है, उसकी बराबरी दूसरी कोई भी अक्ल नहीं कर सकती और उस अक्ल का अगर हमें उपयोग न मिले तो हमारा देश बहुत कुछ खो देगा। इसलिए जरूरी है कि मजदूरों की अक्ल का, जैसी भी वह आज है, पूरा उपयोग हो। इसी के साथ उनकी अक्ल बढ़े, ऐसी भी योजना होनी चाहिए और उनमें यह भी एक योजना होगी कि उन्हें जमीन दी जाए। अलावा इसके कि उन्हें और तालीम देनी चाहिए, उनके हाथ में जमीन देना उस तालीम का एक अंग होगा और उनकी अक्ल बढ़ाने का भी एक साधन बनेगा।

एक 'सर्व-सेवा-संघ' और दूसरा 'सर्वोदय-समाज'— इस तरह की रचना हमने की है। नाम 'सर्वोदय-समाज' का चलेगा और काम 'सर्व-सेवा-संघ'

करेगा। 'सर्व सेवा संघ' शिथिल नहीं, नियमबद्ध, मजबूत संस्था होगी; 'सर्वोदय-समाज' शिथिल या अशिथिल रचना न होकर, एक अ-रचना होगी— विचार की सत्ता मान्य करने वाला समाज! इसके लिए निरंतर प्रचार चाहिए और उसके लिए घूमना चाहिए। साहित्य का प्रचार और उसका चिंतन-मनन, अध्ययन होना चाहिए। ऐसे वर्ग जगह-जगह चलने चाहिए, जो हमारे विचार की दूसरे विचारों के साथ तुलना कर अध्ययन करें।

'सर्व सेवा संघ' एकरस संस्था बननी चाहिए। पुराने ढांचे के अनुसार विभिन्न संस्थाएं अलग-अलग काम करती रहें, तो उनमें से शक्ति निर्माण नहीं होगी। अगर हमें अपना समाज एकरस बनाना हो, तो चार घंटे खेती का काम करें, एकाध घंटा सूत कातने का काम करें, एकाध घंटा रसोई वगैरह का काम करें और फिर तीन-चार घंटा उर्दू या हिंदी, जो कुछ सीखना हो, सीखें। कुछ लड़कों को सिर्फ उर्दू और नागरी सिखाते बैठने से देश की ताकत न बढ़ेगी। जीवन की सारी बातें वहां दाखिल कर समग्रता लाई जाए, तभी उस उर्दू में ताकत आएगी, तभी उस नागरी में ताकत आएगी।

हम जो अलग-अलग काम करते हैं, उनसे ताकत क्यों नहीं पैदा होती और जिस क्रांति की हम आशा रखते हैं, वह जनता के बीच क्यों निर्माण नहीं होती, मैं इसका यही एक मुख्य कारण मानता हूं। हमारे संघ अलग-अलग और एकांगी काम करते हैं। सर्व सेवा संघ को एकरस बनाए बगैर हमें शक्ति का दर्शन नहीं होगा।

भूदान का जो काम हमने शुरू किया है, वह यह है कि कम-से-कम पांच करोड़ एकड़ जमीन इस हाथ से उस हाथ में जानी चाहिए। अगर इस काम में हम सब सर्वोदय-समाज के माने जाने वाले ही नहीं बल्कि कांग्रेस वाले, प्रजा समाजवादी आदि जो भी इस विचार को कबूल करते हैं, वे सब लग जाएंगे, तो जमीन के मसले को हल कर सकेंगे— चाहे सोलह आना सफलता पाकर, बिना कानून से हल हो जाए, चाहे बारह आना या आठ आना सफलता पाकर, कानून की पूर्ति से पूरा हो जाए। अगर पूर्णतया जन-शक्ति से हल हुआ, तो मैं आनंद से नाचने लगूंगा। लेकिन प्रधानतया जन-शक्ति से हुआ, तो भी संतोष मानूंगा।

आज समाजवादी मुझसे कहते हैं कि "आपने यह कार्यक्रम तो हमारा ही उठा लिया!" मैं कहता हूं : "मुझे कबूल है, और इसलिए मेहरबानी करके मुझे मदद दीजिए!" कांग्रेस वाले कहते हैं : "यह कार्यक्रम तो बहुत अच्छा है, हमें करना ही था!" तो उनसे भी हम मदद चाहते हैं। जनसंघ वाले कहते हैं कि "आपका कार्यक्रम भारतीय संस्कृति के अनुकूल है, इसलिए अच्छा है।" इस तरह भिन्न-भिन्न पक्ष वाले भी इस कार्यक्रम को पसंद करते हैं।

इसलिए अगर हम सब इस काम में लग जाएं, तो हो सकता है कि आगामी आम चुनाव में बहुत-सा मतभेद न रहे और अच्छे-से-अच्छे लोग चुन लिये जाएं। इस तरह हुआ, तो आगे बनने वाली सरकार बहुत शक्तिशाली होगी। यह एक उम्मीद इस कार्यक्रम से मैंने की है।

एक बात और हम चाहते हैं। आज तक हमने जितनी संस्थाएं चलाईं, वे पैसे का आधार लेकर चलीं। पैसे वाले हमारे मित्र, प्रेम सहानुभूति रखने वाले हमें मदद देते और हम लेते थे। इसमें हम कुछ गलती करते थे, ऐसी बात नहीं। पर अब जमाना बदल गया है। अब श्रम का जमाना आया है। अतः हमें श्रम की प्रतिष्ठा बढ़ानी चाहिए। हर प्रांत में एकाध संस्था ऐसी बना सकें, तो अवश्य बनाएं कि जो आरंभ में श्रम के आधार पर ही चलें और यदि लेना हो, तो श्रम का ही दान लें।

हमारा यह काम किसी संप्रदाय का काम नहीं है। 'सर्वोदय वाले'– यह शब्द भी सुनाई न पड़े, क्योंकि यह शब्द ही गलत है। ध्यान रहे कि हम केवल मानव हैं, मानव से भिन्न कुछ नहीं! नहीं तो देखते-देखते यह सर्वोदय-समाज, आज अनुशासनबद्ध न होने पर भी, आगे 'पंथिक' और 'सांप्रदायिक' बन जाएगा और हम दूसरों से अलग हो जाएंगे। इसलिए मुंह से कभी ऐसी भाषा न निकले कि फलाना समाजवादी है, फलाना कांग्रेसवाला है, तो फलाना सर्वोदयवादी!

हमारा कोई भी पक्ष नहीं है। जिसे 'तीसरी शक्ति' कहते हैं, वे हम हैं। आज की दुनिया की परिभाषा में 'तीसरी शक्ति' का अर्थ है, जो शक्ति न तो अमेरिकी गुट में शामिल हो और न रूसी गुट में। लेकिन मेरी 'तीसरी शक्ति' की परिभाषा यह होगी– जो शक्ति हिंसा-शक्ति की विरोधी है, अर्थात् जो हिंसा की शक्ति नहीं है और जो दंड-शक्ति से भी भिन्न अर्थात् जो दंड-शक्ति भी नहीं है, ऐसी शक्ति! एक हिंसा-शक्ति, दूसरी दंड-शक्ति और तीसरी हमारी शक्ति!! हम उसी शक्ति को व्यापक बनाना चाहते हैं। इसलिए हमें अपना कोई अलग संप्रदाय बनाना नहीं है। हमें आम लोगों में घुल-मिल जाना है और मानवमात्र बनकर ही काम करना होगा।

(7 मार्च 1953 : चांडिल बिहार) सर्वोदय सम्मेलन)